Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 4, March-2019, ISSN 2230-7540

लोकतांत्रिक व्यवस्था में पंचायती राज की प्रासंगिता

Vijaypal Singh*

M.A. in Sociology, UGC NET, Income Tax Inspector, Department of Revenue, Ministry of Finance at Noida

सार - भारतीय जनमानस में अनादिकाल से ही यह विश्वास रहा है कि पंचों के मुख से परमेश्वर बोलते हैं। पंचों के न्याय में परमेश्वर का न्याय निहित होता है।

प्राचीन भारत का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि भारतीयों ने सामुदायिक जीवन का विकास एवं आपसी वाद-विवाद पंचायतों के माध्यम से निपटाये हैं। इस तरह स्वनिर्मित एवं स्वशासित भारतिय ग्रामीण समुदाय में जीवन में सहजता एवंज न कल्याण कि भावना आदिकाल से ही विद्यमान रही है।

वर्तमान में पचायती राज की स्थापना भारतीय लोकतंत्र की एक बहुत ही महत्वपूर्ण उपलब्धि है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण और पंचायती राज दोनों एक दूसरे के पर्यायवाची है। यह जनता और सत्ता का आपसी समन्वय है। पंचायती राज लोकतंत्र का ही रूप है।

----------X----------

लोकतंत्र की जो लोकप्रिय परिभाषा अब्राहिम लिंकन द्वारा दी गई है जिसमें उन्होंने लोकतंत्र को जनता का, जनता द्वारा और जनता के लिये शासन कहा है। आज भी प्रांसंगिक यह परिभाषा और इसका वास्तविक मूर्तरूप हमें पंचायती राज व्यवस्था में देखने को मिलता है।

भारत में सही-सही एवं यथार्थ रूप में विकेन्द्रित लोकतंत्रीय राज व्यवस्था का मूर्तमान रूप में क्रियान्वयन ही पंचायती राज व्यवस्था का फवितार्थ है। वस्तुतः भारतीय लोकतंत्र इस बुनियादी धारणा पर आधारित है कि शासन के प्रत्येक स्तर पर जनता अधिक से अधिक शासन के कार्यो में हाथ बेंटाये और अपने पर राज करने की जिम्मेदारियों का निर्वहन स्वयं करे। भारत गावों का देश है, गांव देश की बुनियाद हैं और यहां जनतंत्र का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि ग्रामीणजनों का शासन से कितना अधिक प्रत्यक्ष एवं सजीव संपर्क स्थापित हो पाता है।

विशाल भारत की भौगोलिक परिस्थिवियां विकेन्द्रीकरण की पक्षधर रही हैं जो क्षेत्रीय एवं आंचलिक विकास की भावना से ओतप्रोत कही जा सकती हैं। इसी क्रम में ग्रामीण विकास विकास पंचायती राज व्यवस्था से ही संभव है। यह विचार ग्रास रूट्स डेमोक्रेसी पर आधारित है जिसमें माना जाता है कि लोकतंत्र की आधारशिला छोटे स्वशासी समुदायों पर रखी जानी चाहिये। जब तूफान-आंधी का प्रकोप आता है तो अनेक बड़े वृक्ष धराशाही हो जाते हैं जबकि नीचे की हरी भरी घास लहराती रहती है।

हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की समूची चिंतन धारा ग्रामोन्मुखी थी। उनकी मान्यता थी कि भारत के अभीष्ट राजनीतिक एवं आर्थिक समाज की रचना का चित्र यह है कि इसकी नींव ग्रामपंचायतों पर होगी। ये ग्रामपंचायतें परस्पर मिलकर छोटे-छोटे संघ बनावेंगी और छोटे संघ बडे संघ बनावेंगे। यह प्रक्रिया उत्तरोत्तर व्यापक होती जावेगी। इस तरह से पंचायतें भारत के राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ बनेंगी। गांधी जी का स्पष्ट कहना था कि बीस आदमी केन्द्र में बैठकर सच्चे लोकतंत्र को नहीं चला सकते, इसे चलाने के लिए हर गांव के निवासियों को नीचे से प्रयास करने होंगे।

गांधी जी ने स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ग्रामीण स्वराज्य की जिस धारणा का बीजारोपण किया था, उसका प्रस्फुटन लम्बें समय बाद हुआ। इस बीच गांधी बिना प्रयोग के रह गये। पं॰ नेहरू के सामुदायिक विकास कार्यक्रम के भीतर ही पंचायती राज को रखा गया जिसके आशानुकूल फल प्राप्त नहीं हुये।

भारत में पंचायती राज संस्थाओं का अतीत रहा है। वैदिक युग में ग्रामों में राजनीतिक इकाई माना जाता था। महाभारत में ग्रामसभा का उल्लेख मिलता है। भारतीय

www.ignited.in

इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य से लेकर 12 वीं सदी तक पल्लवों के शासकाल में ग्राम सभायें अपने-अपनें क्षेत्र में तत्कालीन स्थानीय व सामाजिक समस्याओं का हल खोजा करती थीं। जातिगत पंचायतों को तो परम्परा के रूप में कार्य करते व जाति बिरादरी के विभिन्न मामलों को निपटाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते, अब तक देखा जा सकता है। किन्तु मुगलकाल एवं आगे अग्रेजी शासकों के केन्द्रीयकरण की नीति अपनाकर सामंतवाद को बढ़ावा देकर पंचायती व्यवस्था को प्रभावहीन कर दिया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने समय-समय पर अपने अधिवेशनों में पंचायतों को वास्तविक स्वरूप में लाने व लोकजीवन से उन्हें जोड़न हेतु राजनीतिक प्रस्ताव पारित किये। आजादी के बाद राजनीतिक स्वतंत्रता के साथ ही आर्थिक स्वतंत्रता व सामाजिक न्याय पर आधारित समाज की संरचना पर राष्ट्रनेताओं का ध्यान गया उन्हें एहसास था कि भारत की 80 प्रतिशत की आबादी ग्रामीण है जो कि गरीब एवं अशिक्षित है। संविधान के अनुभव में नीति निर्देशक सिद्धांतों के अंतर्गत पंचायती राज की स्थापना हेतु आश्वासन दिया गया किन्तु यह दायित्व राज्य सरकारों को सौंपा गया। इस दिशा में राज्यों द्वारा अपने-अपने ढंग से पचांयती राज व्यवस्था अपनाई गयी।

उत्तर प्रदेश ने सर्वप्रथम इसकी शुरूआत की, आगे गुजरात, महाराष्ट्र, राजस्थान, आंधप्रदेश आदि में इसका सफल क्रियान्वयन किया गया, किन्तु देश के अनेक भागों में इसका सफल प्रयोग न हो सकने से इस पर चिंता व्यक्त की गई, साथ ही लोकतांत्रिक व्यवस्था में पंचायतों की सार्थकता, अपरिहार्यता को भी स्वीकारा गया। इस हेतु समय-समय पर विभिन्न अध्ययनदलों व समितियों का गठन किया गया। इनमें 1957 वलवंतराय मेहता समिति, 1965 संतानम समिति, 1969 सादिक अली समिति आदि प्रमुख हैं, जिनके सुझावों, अनुशंसाओ के आधार पर विभिन्न राज्यों ने अपने-अपने अधिनियम पारित किये, जिनमें पंचायतों की स्थिति, गठन को लेकर एकरूपता का अभाव देखा गया।

एकस्तरीय पंचायतें जम्मू-कश्मीर, केरल में, तो द्विस्तरीय आसाम, उड़ीसा, हरियाणा में कार्यरत रहीं, जबकि बिहार, आन्ध्रप्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश में त्रिस्तरीय पंचायतें कार्य करती रही हैं।

उस समय यह विचित्र लगता था कि दो पड़ोसी राज्यों के अधिकारी को दो अलग-अलग नामों से पुकारा जाता था, यथा राजस्थान में पंचायत समिति अध्यक्षों कों "प्रधान" यू.पी. में प्रमुख, तो म.प्र. में चेयरमैंन कहा जाता था, इससे अनावश्यकता भ्रम व जटिलता की स्थितियां बनती थीं। अतः यथासंभव एकरूपता लाने की आवश्यता महसूस की जा रही थी। इस हेतु 1993 में 73 वां संविधान संशोधन अधिनियम संसद में पारित किया गया। जिसके अंतर्गत देश में पंचायती राज को संवैधानिक दर्जा दिया गया और प्रत्येक राज्य सरकारों को अपने राज्य में पंचायती राज की स्थापना करना अनिवार्य किया गया।

त्रिस्तरीय पंयायत प्रणाली के साथ ही ग्रामसभाओं को अधिक शक्तिशाली बनाने का प्रवाधान इसमें रखा गया। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य यह रहा कि पंचायतों को अधिक लोकोन्मुखी बनाने हेतु अनुसूचित जाति, जनजाति को जनसंख्या के अनुपात में आरक्षण दिया गया। इन पदों में से कम से कम एक तिहाई पद अनुसूचित जाति व जनजाति वर्ग की महिलाओं के लिये रखे गये। ग्राम पंचायत के सरपंच जनपद व जिला पंचायत के अध्यक्षों के पदों में से कम से कम एक तिहाई पद महिलाओं के लिये आरक्षित किये गये है। राज्य विधान मण्डल को पिछड़े वर्ग के लिये भी इस संदर्भ में आरक्षण करने का अधिकार दिया गया है। अपने-अपने क्षेत्र के समग्र विकास, सामाजिक न्याय एवं जनसहभागिता हेतु पंचायतों को व्यापक एवं बहुमुखी अधिकार प्रदान किये गये हैं।

पंचायती राज व्यवस्था को दिया गया संवैधानिक दर्जा ग्राम स्वराज्य की दिशा में जहां एक ओर मील का पत्थर है, वहीं दूसरी ओर इससे स्थानीय स्वशासन, विकेन्द्रीकरण एवं सूदूर ग्रामीण क्षेत्रों को शासन सत्ता अधिकारों का हस्तांतरण हुआ। इससे भारत में जहां भारतीय लोकतंत्र 4 हजार विधायकों एवं 800 सांसदों तक सीमित था, वहीं सत्ता और जनता के इस भारी अंतर के कारण सत्ता के दलाल पनपते थे। अब पंचायतीय राज व्यवस्था से यह संख्या लगभग 7 लाख हो गई है इससे लोकतंत्र का आधार और ज्यादा व्यापक हुआ है।

लोकतंत्र के संबंध में एक प्रसिद्ध उक्ति है कि लोकतंत्र के दोषो का निराकरण कम लोकतंत्र के द्वारा नहीं बल्कि अधिक लोकतंत्र के द्वारा ही किया जा सकता है। यह कथन सत्ता के विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता पर जोर देता है। प्रसिद्ध इतिहासकार लाई एक्टन का कथन है कि "सत्ता दूषित करती है और असीमित सत्ता असीमित ढंग से दूषित करती है।" यह विचार निराधार नहीं है कि पंचायती राज संस्थाओं को प्रारंभ में अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ सकता है किन्तु

www.ignited.in

असामान्य में राजनीतिक दायित्व उत्पन्न करने और राजनीतिक प्रशिक्षण देने का कोई दूसरा उपाय नहीं है।

लोकतत्र को सफल बनाने के लिये पंचायती राज्यों के पुनगर्ठन का जो प्रयास किया गया है उसकी सार्थकता के संबंध में कहा जा सकता है कि यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें जनसाधारण की भागीदारी होती है जो स्वायत्ता शासन में ही संभव है। यह ऐसा प्रजातंत्र है जिसकी जडे जमीन में हैं और जनता के बहुत निकट हैं। ग्राम पंचायतो का भारतीय जीवन में बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी में कुछ ब्रिटिश पर्यवेक्षकों का ग्राम पंचायतों की जीवन शक्ति से बड़ा आश्चर्य हुआ। चाल्स मेटकॉफ़ ने तो विस्तय विमुग्ध होकर कहा कि - "ये ग्राम पंचायतें छोटे-मोटे गणराज्यों की तरह हैं और जब कोई भी राजवंश स्थायी सिद्ध नहीं होते तो भी उस समय इनका अस्तित्व बना रहता है।

इस संबंध में गाँधी जी के विचार अनोखे एवं महत्वपूर्ण रहे ही हैं जिसके कारण स्वतंत्र भारत के संवैधानिक इतिहास में पहली बार पंचायती राज संस्थाओं को वास्तविक गौरव प्रदान किया गया है। इससे स्पष्ट है कि पंचायती राज की अवधारणा का अवतरण कोई आकस्मिक घटना नहीं है बल्कि महात्मा गांधी जी से लेकर अब तक निरंतर इसकी गूंज होती रही है जिसे आज साकार करने का प्रयास किया जा रहा है।

यदि पंचायती राज संस्था की जनकल्याणकारी योजना को अंतिम व्यक्ति तक पहुंचा सके तभी संस्था का अस्तित्व में आना सार्थक कहा जा सकता है। यह आवश्यक है कि पंचायतों कों सौंपे गये अधिकारों की सार्थकता तथा जनहित में अभियान चलाया जा रहा हैं। यह निश्चित है कि इस अभियान की सफलता से पंचायती राज संस्थायें मजबूत होंगी तथा जन अपेक्षाओं को पूर्ण करने में सफल होंगी।

इस तरह से पंचायती राज को करोड़ों भारतीयों के द्वार तक ले जावेगा। राष्ट्रीय विकास की धारा से गांव जुड़ेगे। यह व्यवस्था अधिकतम लोकतंत्र एवं अधिकतम लोगों को अधिकतम आधारभूत सत्ता के हस्तांतरण एवं उनकी शासन में सहभागिता पर आधारित होने से पंचायती राज की सार्थकता लोकतांत्रिक व्यवस्था में स्वयंसिद्ध हुई प्रतीत होती है। इससे भारतीय लोकतंत्र और ज्यादा प्रखर एवं प्रभावी हो सकेगा

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भटनागर, एस॰, रूरल लोकल गवर्नमेंट इन इंडिया, पृ॰ 17।
2. विष्णुप्रसाद, भारत में स्थानीय स्वशासन, पृ॰ 21।
3. डॉ. पट्टाभिसीता रमैया, गांधी का समाजवाद, अमीनाबाद, लखनऊ, पृ॰62।
4. डॉ. मेहता बल्लभदास, पंचायती राज का आदर्श स्वरूप, नवभारत, पृ॰ 14.8.94।
5. श्रीवास्तव, एन॰के॰, भारत में पंचायतीराज, पृ॰ 32।
6. डॉ. बी॰ सी॰ तायल, भारतीय शासन एवं राजनीति, नई दिल्ली पृ॰ 358।
7. डॉ. दयाल रालेश्वर, पंचायती राज इन इंडिया नई दिल्ली, पृ॰ 21।
8. 73वां संविधान संशोधन अधिनियम, 1993।
9. मालवीय ओ॰पी॰, पंचायती राज से उद्धृत, पृ॰ 70।

Corresponding Author

Vijaypal Singh*

M.A. in Sociology, UGC NET, Income Tax Inspector, Department of Revenue, Ministry of Finance at Noida

singhvijaypal89@gmail.com

www.ignited.in